<u>प्रतिवेद्य</u>

भारत के सर्वोच्च न्यायालय में

दीवानी अपीलीय अधिकारिता

<u>सिविल अपील संख्या 9329/2022</u>

(एसएलपी (सी) संख्या 28128/2017 से उत्पन्न)

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। **... अपीलकर्तागण**

बनाम

राजमती सिंह **... प्रत्यर्थी**

<u>निर्णय</u>

1. विलंब माफ किया जाता है।

2. अनुमति प्रदान की जाती है।

3. उत्तर प्रदेश राज्य और शिक्षा खण्ड पीठ में उसके प्राधिकारी इलाहाबाद उच्च न्यायालय, लखनऊ पीठ द्वारा दिनांक 24.01.2017 को पारित उस निर्णय से व्यथित हैं जिसमें प्रत्यर्थी को सेवा में जारी रखने की घोषणा की गई थी, इस प्रकार, उसे वेतन सहित सभी पारिणामिक लाभों का हकदार

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बनाया गया था। उत्तर प्रदेश सरकार को इस स्थिति के लिए जिम्मेदार बेसिक शिक्षा विभाग के अधिकारियों का पता लगाने के लिए जांच करने की अनुमति दी गई है, जिसके कारण सभी पारिणामिक लाभों के साथ बहाली का आदेश दिया गया और जिम्मेदार अधिकारियों से पूरी राशि की वसूली का आदेश दिया गया है।

4. तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख किया जा सकता है।

5. प्रत्यर्थी को 28.01.1971 को कन्या करमोत्तर जूनियर हाई स्कूल, गौरा, रायबरेली में अप्रशिक्षित सहायक शिक्षिका के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें 04.08.1973 को उपर्युक्त पद से मूल प्रशिक्षण पाठ्यक्रम (संक्षिप्त 'बीटीसी' के लिए) पूरा करने के लिए मुक्त कर दिया गया था। जिस पद पर प्रत्यर्थी को कार्यकाल के आधार पर नियुक्त किया गया था, उसे जारी रखने के लिए, विभाग के निर्देशों के अनुसार, इस पाठ्यक्रम को पूरा करना एक आवश्यकता थी। प्रत्यर्थी ने बीटीसी प्रशिक्षण प्रमाणपत्र प्रस्तुत नहीं किया, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उसने इसके बजाय बीएड प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया था, जिसके आधार पर उन्हें वर्ष 1974 में अपनी सेवा को फिर से शुरू करने की अनुमति नहीं दी गई थी। प्रत्यर्थी की सेवाओं को समाप्त करने का कोई औपचारिक आदेश पारित नहीं किया गया था, लेकिन इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वह एक अप्रशिक्षित शिक्षिका थी और स्वीकृत रूप से उसे अपने कर्तव्यों से मुक्त किया गया था, उसका संविदात्मक नियोजन समाप्त हो गया।

6. ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी ने अभ्यावेदन दिए थे, जिनको प्राधिकारियों द्वारा अनदेखा कर दिया गया था। अगले कई दशकों तक,

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रत्यर्थी ने अपना अभ्यावेदन देना जारी रखा, लेकिन राहत पाने के लिए किसी न्यायिक/अर्ध न्यायिक न्यायाधिकरण में नहीं गयीं। उन्होंने अंततः वर्ष 2009 के आसपास, सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 के लागू होने के बाद राज्य सूचना आयोग, उत्तर प्रदेश के समक्ष एक शिकायत दर्ज कराई और उनकी शिकायत के आधार पर आयोग ने 5 मार्च, 2009 को एक आदेश पारित किया, जिसमें जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, रायबरेली को प्रत्यर्थी के अभ्यावेदनों पर निर्णय के बारे में प्रत्यर्थी को सूचित करने का निर्देश दिया गया।

7. राज्य सूचना आयोग के पूर्वोक्त आदेश से जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी दिनांक 04.06.2009 को एक संसूचना (पी–2) जारी करने के लिए मजबूर हुआ जिसमें एक संक्षिप्त इतिहास है कि कैसे प्रत्यर्थी आवश्यक बीटीसी प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने में विफल रहा और उसे अपनी सेवा को फिर से जारी रखने की अनुमति नहीं दी गई। यह आदेश, किसी भी तरह से, प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए अभ्यावेदनों पर नए सिरे से विचार करने या गुणागुण के आधार पर उनकी अस्वीकृति नहीं मानी जाएगी। इसमें केवल 1973–1974 की घटनाओं के बारे में इतिहास को संसूचित किया गया था जब प्रतिवादी ने एक छोटी अवधि के लिए काम किया था।

8. यह दावा करते हुए कि दिनांक 04.06.2009 का पत्र उसे बहाली से इनकार करने के बराबर है, प्रत्यर्थी ने 03.06.2010 को राज्य लोक सेवा अधिकरण (संक्षेप में, 'अधिकरण') का दरवाजा खटखटाया, लेकिन उसकी दावा याचिका 11.06.2010 को खारिज कर दी गई क्योंकि वह परिसीमा द्वारा वर्जित थी। प्रत्यर्थी ने एक पुनर्विलोकन याचिका दायर की, लेकिन इसे

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

13.08.2010 को खारिज कर दिया गया। इसके बाद, प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसने दिनांक 02.07.2012 के आदेश द्वारा अधिकरण को मामले पर नए सिरे से गुण–दोष के आधार पर विचार करने का निर्देश दिया। इसके बाद न्यायाधिकरण ने 13.12.2013 को एक आदेश पारित किया जिसमें अपीलार्थी–अधिकारियों को निर्देश दिया गया कि वे प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए अभ्यावेदनों पर विचार करें और उनका निपटारा करें। इन निर्देशों के अनुपालन में, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने 05.04.2014 को प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए अभ्यावेदन पर विचार किया और इसे खारिज कर दिया। सार रूप में, वास्तव में प्रत्यर्थी को भेजी गयी यह पहली संसूचना थी जिसमें स्पष्ट रूप से बहाली/फिर से सेवा में रखने के उसके दावे को खारिज कर दिया गया था, क्योंकि पूर्व की संसूचना में गुण–दोष के आधार पर कोई अभिनिर्धारण नहीं किया था।

9. प्रत्यर्थी ने 5 अप्रैल 2014 की संसूचना और 13 दिसंबर, 2013 के अधिकरण के आदेश को चुनौती देते हुए फिर से उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा, जैसा कि पहले कहा गया है, अधिकरण के दिनांक 13.12.2013 के आदेश को संशोधित किया है और प्रत्यर्थी को वेतन सहित सभी पारिणामिक लाभों के साथ सेवा में जारी रखने की घोषणा की गयी है।

10. हमारे विचार के लिए जो प्रश्न आता है वह यह है कि क्या प्रत्यर्थी का दावा अत्यधिक विलंब, अप्रचलित, पुराना और विलंब व देरी के सिद्धांत द्वारा वर्जित है और एक दीवानी दावे के रूप में, क्या यह परिसीमा विधि द्वारा वर्जित था?

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

11. उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर का पता लगाने के लिए कुछ तथ्यों को दोहराने की आवश्यकता है। प्रत्यर्थी को आश्यक बीटीसी पाठ्यक्रम करने के लिए प्रत्यक्ष रूप से 04–08–1973 को मुक्त किया गया था। कथित तौर पर, उन्हें बी. एड. डिग्री पूरी करने के बाद वर्ष 1974 में सेवा में वापस आने की अनुमति नहीं दी गई थी। उन्होंने एक के बाद एक कई अभ्यावेदन दिए, लेकिन किसी भी न्यायिक या अर्ध न्यायिक मंच में जाना उचित नहीं समझा। सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अधिनियमन के बाद ही, जिसके तहत राज्य सूचना आयोग का गठन किया गया था, प्रत्यर्थी ने अपने अभ्यावेदनों पर हुए निर्णय को जानने के लिए एक निर्देश जारी करने के लिए उक्त आयोग के समक्ष आवेदन किया। आयोग ने 05.03.2009 को एक आदेश पारित किया जिसमें अपीलकर्ता–प्राधिकारियों से प्रत्यर्थी के अभ्यावेदनों पर निर्णय संसूचित करने के लिए कहा गया और इसी पृष्ठभूमि में, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा दिनांक 04.06.2009 को पत्र जारी किया गया था, जिसने प्रत्यर्थी के अनुसार उसके लंबित दावे को पुनर्जीवित किया।

12. हमारे सुविचारित दृष्टिकोंण में, प्रत्यर्थी से किसी सतर्क नागरिक की तरह, विशेष रूप से यह देखते हुए कि वह समाज के आर्थिक या सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों से संबंधित नहीं है, उचित समय के भीतर एक समुचित मंच के समक्ष अपने अधिकारों का दावा करना अपेक्षित था। बार–बार किए गए अभ्यावेदन से न तो वाद हेतुक बनता है और न ही यह इसे पुनर्जीवित करता है, यदि यह भूतकाल में पहले से ही उत्पन्न हो गया हो। प्रत्यर्थी की कठिनाइयां वहीं समाप्त नहीं होती हैं, यह देखते हुए कि उसकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था जब उसे वर्ष 1974 में अपने कर्तव्यों को फिर से

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जारी रखने से इनकार कर दिया गया था। इस प्रकार, उसे अपनी सेवा को जारी रखने की घोषणा की मांग करने या अपनी बहाली के लिए परमादेश का एक रिट जारी करने की आवश्यकता थी। उसने ऐसा कुछ भी नहीं किया।सूचना आयोग सेवा विवादों को निपटाने का मंच नहीं है। यह एक ऐसा मंच नहीं था जो या तो प्रत्यर्थी के अधिकारों की घोषणा कर सकता था या कोई सेवा लाभ प्रदान कर सकता था।इस प्रकार राज्य सूचना आयोग के समक्ष प्रत्यर्थी द्वारा उठाया गया यह कदम निरर्थक था। इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि प्रत्यर्थी अपने अधिकारों के प्रति सोया हुआ था और उसने 33 वर्षों से अधिक की लंबी अवधि के लिए अपने अवसर(अधिकार) को गवाया।

13. हमारी यह सुविचारित राय है कि प्रत्यर्थी ने इस संबंध में आपत्तियां उठाने के अपने अधिकारों का अधित्यजन किया और यह समझा जाता है कि उसने अपनी नौकरी का परित्याग कर दिया है।

14. अगला सवाल जो विचार के लिए आता है वह यह है कि क्या सेवाओं की समाप्ति या नौकरी के परित्याग के किसी डीम्ड आदेश को प्रत्यर्थी द्वारा वर्ष 2010 में अधिकरण के समक्ष चुनौती दी जा सकती है? इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) अधिनियम, 1976 की धारा 5 के तहत इस तरह की चुनौती अत्यधिक समयबाधित थी।

15. अधिकरण द्वारा 11.06.2010 को लिया गया दृष्टिकोण कानूनी रूप से सही और तर्कसंगत था। फिर भी उच्च न्यायालय ने, प्रत्यर्थी की रिट याचिका में दिनांक 02.07.2012 के आदेश द्वारा अधिकरण के आदेश को

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रद्द कर दिया। उच्च न्यायालय के आदेश के परिशीलन से पता चलता है कि वर्तमान मामले के तथ्यों के संदर्भ में न तो विलंब के सिद्धांतों पर विचार किया गया था और न ही परिसीमा विधि पर विचार किया गया था। उच्च न्यायालय ने विधिक प्रस्थापना की स्वेच्छया अनदेखी की और इस आधार पर आगे बढ़ा कि अधिकरण के समक्ष दावा याचिका दायर करने में प्रत्यर्थी की ओर से कोई गलती नहीं थी क्योंकि "आक्षेपित आदेश 04.06.2009 को पारित किया गया था xx xx xx"। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य की पूरी तरह से अनदेखी की कि यह प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए अभ्यावेदनों पर पारित आदेश नहीं था, बल्कि राज्य सूचना आयोग द्वारा जारी निर्देशों के कारण मजबूरी में उसे भेजी गयी एक संसूचना थी। कथित संसूचना ने किसी भी तरह से प्रत्यर्थी के पक्ष में वाद हेतुक को पुनर्जीवित नहीं किया।

16. पूरी निष्पक्षता से और इस परिस्थिति में, प्रत्यर्थी की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **"बेसिक शिक्षा परिषद और एक अन्य बनाम सुगना देवी (श्रीमती) और अन्य" (2004) 9 एससीसी 68** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया है।

17. **सुगना देवी के मामले** में, विचार के लिए उठाया गया एकमात्र मुद्दा यह था कि क्या उन्हें सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था या नहीं और यदि हां, तो क्या उनकी सेवाओं को अवैध रूप से समाप्त कर दिया गया था। इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए तथ्य के निष्कर्ष को बरकरार रखा जिसने वेतन के भुगतान, स्थानांतरण आदेशों, नियुक्ति रिपोर्टों और उससे उसके प्रमाण पत्रों आदि की मांग करते हुए प्राधिकार पत्र के संबंध में, अभिलेख पर विचार करने के बाद यह माना कि सुगना देवी

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वास्तव में एक शिक्षक के रूप में काम कर रही थीं। आगे यह भी माना गया कि कोई औपचारिक आदेश पारित किए बिना उनकी सेवाओं को समाप्त नहीं किया जा सकता है। परिणामस्वरूप, इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा "उनकी सेवानिवृत्ति की तारीख से पहले के अंतिम तीन वर्षों के वेतन के बराबर मुआवजा" देने के लिए जारी निर्देशों को बरकरार रखा।

18. **"भारत संघ और अन्य बनाम तरसेम सिंह" (2008) 8 एससीसी 652** में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में स्थापित सिद्धांतों का सारांश दिया:

> "7. संक्षेप में, सामान्यतः विलम्बित सेवा संबंधी दावे को विलंब व देरी (जहां रिट याचिका दायर करके अनुतोष की मांग की जाती है) या परिसीमा (जहां प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष प्रार्थना–पत्र द्वारा अनुतोष की मांग की जाती है) के आधार पर अस्वीकार कर दिया जाएगा। उक्त नियम के अपवादों में से एक सतत अपकृत्य से संबंधित मामले हैं। जहां कोई सेवा संबंधी दावा किसी सतत गलती(अपकृत्य) पर आधारित है, वहां उस तारीख से जिस तारीख को निरंतर अपकृत्य शुरू हुआ, राहत प्रदान की जा सकती है, भले ही अनुतोष मांगने में काफी देरी हो, यदि इस तरह का निरंतर अपकृत्य हानि के निरंतर स्रोत का सृजन करता है। लेकिन इस अपवाद का एक अपवाद है। यदि शिकायत किसी ऐसे आदेश या प्रशासनिक निर्णय के संबंध में है जो कई अन्य लोगों से संबंधित है या प्रभावित करती है और यदि मुद्दे को फिर से खोलने से तीसरे पक्ष के निस्तारित अधिकारों पर प्रभाव पड़ेगा, तो दावे

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पर विचार नहीं किया जाएगा। उदाहरण के लिए, यदि मुद्दा वेतन या पेंशन के भुगतान या पुनर्निर्धारण से संबंधित है, तो देरी के बावजूद राहत दी जा सकती है क्योंकि यह तीसरे पक्ष के अधिकारों को प्रभावित नहीं करता है। किंतु यदि दावे में वरिष्ठता या प्रोन्नति आदि से संबंधित मुद्दे शामिल हैं, जो दूसरों को प्रभावित करते हैं, तो विलंब के कारण दावा पुराना हो जाएगा और विलंब/परिसीमा का सिद्धांत लागू होगा। जहां तक पिछली अवधि के लिए बकाया राशि की वसूली के परिणामस्वरूप राहत का संबंध है, सतत अपकृत्य से संबंधित सिद्धांत लागू होंगे। परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय बकाया से संबंधित परिणामी राहत को आम तौर पर रिट याचिका दायर करने की तारीख से तीन साल पहले तक सीमित कर देंगे।"

19. इस मामले के तथ्यों से मिलते जुलते, **"सी जैकब बनाम निदेशक, भूविज्ञान व खनन और अन्य" (2008) 10 एससीसी 115** के मामले में, इस न्यायालय ने यह पाते हुए कि कर्मचारी ने अचानक 20 वर्षों के बाद अपनी सेवाओं की समाप्ति के आदेश को चुनौती दी और सभी पारिणामिक लाभों का दावा किया, यह अभिनिर्धारित किया कि मांगी गई राहत अग्राह्य थी। इस संबंध में कानूनी स्थिति निम्नलिखित शब्दों में निर्धारित की गई थीः

"10. राहत के लिए सरकार का प्रत्येक अभ्यावेदन गुण–दोष के आधार पर लागू नहीं किया जा सकता है। ऐसे मामलों से संबंधित अभ्यावेदन, जो पुराने हो गए हैं या परिसीमा द्वारा वर्जित हैं, दावे

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के गुण–दोष की जांच किए बिना केवल उसी आधार पर अस्वीकार किए जा सकते हैं। विभाग से असंबद्ध अभ्यावेदनों के संबंध में, जबाव केवल यह सूचित करने के लिए हो सकता है कि यह मामला विभाग से संबंधित नहीं है या उपयुक्त विभाग को सूचित करने के लिए है। अपूर्ण विवरणों के साथ दायर अभ्यावेदनों का जबाव प्रासंगिक विवरण मांग कर दिया जा सकता है। ऐसे अभ्यावेदनों का जबाव नया वाद हेतुक उत्पन्न नहीं कर सकता या पुराने या मृत दावे को पुनर्जीवित नहीं कर सकता है।

11. जब किसी न्यायालय/अधिकरण द्वारा अभ्यावेदन पर विचार करने का कोई निर्णय दिया जाता है तो सामान्यतः निदेशित व्यक्ति गुणागुण के आधार पर मामले की जांच करता है, क्योंकि ऐसा करने में असफलता अवज्ञा के समान हो सकती है। जब न्यायालय या अधिकरण के निदेश के अनुपालन में, दावे या अभ्यावेदन पर विचार करते हुए और उसे नामंजूर करते हुए कोई आदेश पारित किया जाता है तो ऐसा कोई आदेश न तो पुराने दावे को पुनर्जीवित करता है और न ही नए वाद हेतुक को जन्म देने के लिए किसी प्रकार के "न्यायिक संबंध की अभिस्वीकृति" के बराबर है।

12. जब कोई सरकारी कर्मचारी दूसरी नौकरी लेने के लिए या व्यक्तिगत मामलों में भाग लेने के लिए सेवा छोड़ देता है और छुट्टी या इस्तीफा या स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए कोई पत्र भेजने की जहमत नहीं उठाता है और अभिलेख उसे सेवा में होना नहीं

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दिखाता है, तो वह दो दशकों के बाद यह अभ्यावेदन नहीं कर सकता कि उसे वापस सेवा में लिया जाना चाहिए।न ही ऐसे कर्मचारी को सेवा में लगा हुआ माना जा सकता है, जिससे पूरी अवधि को पेंशन के उद्देश्य के लिए अर्हक सेवा माना जा सके। यह न्याय का उपहास होगा।

13. जहां कोई कर्मचारी अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहता है और अचानक 20 वर्षों के बाद उपस्थित होता है और यह मांग करता है कि उसे वापस ले लिया जाना चाहिए और न्यायालय की शरण में जाता है, वहां विभाग के पास स्वाभाविक रूप से उस समय तक कर्मचारी से संबंधित कोई अभिलेख नहीं होगा या नहीं हो सकता है। ऐसे मामलों में, जब नियोक्ता जांच के अभिलेख और बर्खास्तगी/हटाए जाने के आदेश को पेश करने में विफल रहता है, तो अदालत अभिलेख पेश नहीं करने के लिए नियोक्ता के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाल सकती है, न ही सेवा की समाप्ति या कर्मचारी की लाभप्रद दूसरी नौकरी को नजरअंदाज करके, 20 वर्षों के लिए पिछले वेतन के साथ प्रत्यक्ष बहाली कर सकती है। ऐसे मामलों में गलत सहानुभूति अनुशासन (?)हीनता को प्रोत्साहित करेगी गलती करने वाले कर्मचारी को अन्यायपूर्ण तरीके से समृद्ध बनाएगी और इसके परिणामस्वरूप सरकारी खजाने की बर्बादी होगी। कई बार पिछली वेतन के नियमित आदेश के परिणामस्वरूप, वित्तीय बोझ की सीमा के बारे में भी मस्तिष्क का उपयोग नहीं होता है।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

20. पूर्वोक्त उद्धृत कानूनी सिद्धांतों के साथ इस मामले में तथ्यों के संचयी प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, हम संतुष्ट हैं कि प्रत्यर्थी का दावा पुराना, अत्यधिक विलंबित, समय वर्जित है और इसे तीन दशकों की अवधि के बाद अधिकरण या उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था।

21. हम दोहराते हैं कि किसी न्यायिक मंच द्वारा अनुचित सहानुभूति और कथित उदार दृष्टिकोण के महत्वपूर्ण प्रतिकूल परिणाम हो सकते हैं। इससे न केवल उदासीन कर्मचारियों के मन में अवैध अपेक्षाएं पैदा होती हैं, बल्कि सरकारी खजाने पर भी अनुचित बोझ पड़ता है। इतना ही नहीं, न्यायालय द्वारा मात्र साम्यिक आधारों पर दिखायी गयी कृपा, कानून की अवहेलना करता है, सार्वजनिक सेवाओं में अनुशासनहीनता पैदा करता है और असुधार्य कर्मचारी अपनी अनुपस्थिति की अवधि या कर्तव्य की अवहेलना के लिए लाभांश की तलाश शुरू कर देते हैं। हालांकि यह सुझाव देने के लिए कोई सबूत नहीं है कि प्रत्यर्थी जानबूझकर अपने कर्तव्य से अनुपस्थित थी, तथ्य स्वयं बताते हैं कि वह तीन दशकों से अधिक समय से कानून के तहत प्रावधानित किसी उपचार की सहायता लेने में विफल रही। हम इस बात को दुबारा कह सकते हैं कि प्रत्यर्थी ने मुश्किल से 2½ साल की अवधि के लिए अस्थायी आधार पर एक अप्रशिक्षित शिक्षक के रूप में काम किया था और उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के संदर्भ में, उसे सभी सेवानिवृत्त लाभों के अलावा 40 साल से अधिक का बकाया वेतन प्राप्त करने का हकदार ठहराया गया है। इसलिए हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय को अपीलार्थियों के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए था या यह साबित करने के लिए उन पर पूरा दायित्व नहीं डालना

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

चाहिए था कि प्रत्यर्थी ने अनुचित रूप से कर्तव्यों(सेवा) को फिर से शुरू करने से इनकार किया था। इस संबंध में उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण पूरी तरह से गलत है और कानून के स्थापित सिद्धांतों के विपरीत है। इस प्रकार आक्षेपित निर्णय कायम नहीं रह सकता है और इसे रद्द किया जा सकता है।

22. ऐसा करने के बाद, आइए हम अपीलार्थियों के आचरण पर भी गौर करें। यह सच है कि राज्य सूचना आयोग के पास सेवा विवाद में हस्तक्षेप करने और दिनांक 05.03.2009 जैसा अनुचित आदेश पारित करने का कोई अधिकार नहीं था। हालांकि अधिकरण ने उस त्रुटि को सुधारा और प्रत्यर्थी के दावों को सीमा द्वारा वर्जित होने के कारण अस्वीकार कर दिया। उच्च न्यायालय ने 02.07.2012 के आक्षेपित निर्णय द्वारा इस आदेश को रद्द कर दिया था। अपीलार्थी चुपचाप बैठे रहे और बिना किसी विरोध के उस निर्णय को स्वीकार कर लिया। उक्त निर्णय ने, एक तरह से, अंतिम रूप प्राप्त कर लिया है, हालांकि यह कानूनी रूप से कायम रहने योग्य नहीं है। उस निर्णय को स्वीकार करने के बाद, अपीलार्थियों को अगले परिणाम का सामना करने के लिए तैयार किया जाना चाहिए था, जो उन्हें उस समय मिला जब अधिकरण ने उन्हें प्रत्यर्थी के अभ्यावेदनों का नए सिरे से फैसला करने का निर्देश दिया। इसने 30 साल से अधिक समय के बाद एक मृत दावे को पुनर्जीवित कर दिया। अपीलार्थियों से अपेक्षित था कि वे घटनाओं के प्रभावों और परिणामों को तुरंत समझ लें, लेकिन वे 02.07.2012 के निर्णय पर चुप रहे। इन परिस्थितियों के तहत, अपीलकर्ता ऐसे समय में प्रत्यर्थी में आशा जगाने के लिए आंशिक रूप से जिम्मेदार हैं जब वह सेवानिवृत्त होने की उम्र के करीब थी।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

23. सभी तथ्यों और परिस्थितियों के संचयी प्रभावों को ध्यान में रखते हुए, जबकि हमने उच्च न्यायालय के दिनांक 24.01.2017 के आक्षेपित निर्णय को रद्द कर दिया है और प्रत्यर्थी की बहाली, सेवानिवृत्ति लाभ या बकाया वेतन आदि के दावे को अस्वीकार कर दिया है; हम अपीलार्थियों को निर्देश देते हैं कि वे इस आदेश की प्रति के प्राप्त होने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी को रु. 5,00,000/– (पांच लाख) की राशि का एकमुश्त भुगतान करें।

24. अपील को पूर्वोक्त शर्तों में अनुमति दी जाती है।

.....

(न्यायमूर्ति सूर्य कांत)

.....

(न्यायमूर्ति जे. के. महेश्वरी)

नई दिल्ली;

07 दिसंबर, 2022.

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।